॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथर्ववेदीय

श्रीराधिकातापनीयोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

श्रुतियोंद्वारा श्रीराधिकाजीकी उपासना और स्तुति

किसी समय उपासनाओंके स्वरूप एवं लक्ष्यका विचार करते समय ब्रह्मवेत्ताओं (वेदज्ञों)-ने परस्पर यह विचार करना प्रारम्भ किया कि श्रीराधिकाजीकी उपासना किसलिये होती है। इस विचारमें प्रवृत्त होनेपर उनपर भगवान् आदित्य (वेदोंके अधिष्ठाता प्रकाशमय ज्ञानके रूपमें) अत्यन्त कृपालु हुए अर्थात् प्रकाश-स्वरूप वैदिक ज्ञान उनमें प्रकट हुआ। (उन्होंने श्रीराधिकाजीकी उपासनाके सम्बन्धमें श्रुतियोंको इस प्रकार संलग्न पाया—)॥ १॥

श्रुतियाँ कहती हैं—'सम्पूर्ण देवताओंमें जो देवत्व (शक्ति) है, वह श्रीराधिकाजीकी ही है। समस्त प्राणी श्रीराधिकाजीके द्वारा ही अवस्थित हैं अर्थात् देवतासे लेकर क्षुद्र प्राणियोंतक सभी जीव श्रीराधिकाजीकी शक्तिसे स्थित एवं चेष्टायुक्त हैं और उन्हींसे अभिव्यक्त हुए हैं। इसलिये हम सब श्रुतियाँ उन श्रीराधिकाजीको नमस्कार करती हैं॥ २॥

'देवताओंके निवास पञ्चभूत, इन्द्रियों आदिमें श्रीराधिकाजीकी प्रेरणासे ही कम्पन (चेष्टा) होती है तथा उन्हींकी प्रेरणासे वे हँसते (उल्लास प्राप्त करते) और नाचते (क्रियाशील होते) हैं। सबकी अधिदेवता श्रीराधिकाजी ही हैं (सब उनके वशमें हैं)। अतएव अपने सम्पूर्ण पापोंके नाशके लिये व्याहृतियों (भूः-भुवः-स्वः या श्रीं-क्लीं-ह्रीं)-द्वारा हवन करके फिर श्रीराधिकाजीको हम प्रणाम करती हैं। (तात्पर्य यह कि विशुद्ध हृदयसे ही श्रीराधिकाजीकी उपासना सम्भव है, अतः यजनसे आत्मशुद्धि करके तब प्रणाम करती हैं)॥ ३॥

'जिनके दिव्य शरीरकी कान्तिके पड़नेसे (जिन योगमायारूपके आश्रयसे) इन्द्रनीलमणिके समान वर्णवाला (इन्द्रियातीत नीलिमाव्यञ्जक) देवाधिदेव श्रीकृष्णचन्द्रका शरीर भी गौर जान पड़ने लगता है (घनसत्त्व होकर आविर्भूत होता है) तथा जिनकी कान्ति पड़नेसे भौंरे, कौए और कोयल (विषय-रस-लोलुप, कटुभाषी पापी एवं मधुरभाषी, पर स्वरूपसे कृष्ण अर्थात् योग-ज्ञानादि साधक, जिनका बाह्यरूप नीरस एवं अनाकर्षक है) भी (रासमण्डलमें) गौरवर्णके (सत्त्वगुणी एवं भक्तियुक्त) हो जाते हैं, उन विश्वकी पालिका श्रीराधिकाजीको हम नमस्कार करती हैं'॥ ४॥

'हम सब श्रुतियाँ, सांख्ययोग, शास्त्र तथा उपनिषद् जिन परब्रह्मकी अभिन्न शक्तिकी अगम्यताका प्रतिपादन करती हैं, जिनको स्वरूपतः भली प्रकार पुराण भी नहीं जानते, उन देवताओंकी पालिका श्रीराधिकाजीको हम नमस्कार करती हैं'॥ ५॥

सम्पूर्ण संसारके अधीश्वर त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्णचन्द्र जिन्हें प्राणसे भी अधिक प्रिय मानते हैं, वृन्दावनमें स्थित अपनी (श्रुतियोंकी) इष्ट—आराध्यदेवी उन

श्रीवृन्दावनकी पालिका—अधिष्ठात्री देवी श्रीराधिकाजीको हम नित्य नमस्कार करती हैं॥ ६॥

'विश्वभर्ता श्रीकृष्णचन्द्र एकान्तमें अत्यन्त प्रेमार्द्र होकर जिनकी पदधूलि अपने मस्तकपर धारण करते हैं और जिनके प्रेममें निमग्न होनेपर हाथसे गिरी वंशी एवं बिखरी अलकोंका भी स्मरण उन्हें नहीं रहता तथा वे क्रीतकी भाँति जिनके वशमें रहते हैं, उन श्रीराधिकाजीको हम नमस्कार करती हैं'॥ ७॥

'श्रीरासमण्डलमें जिनकी रासक्रीडा देखकर चन्द्रमा एवं विवस्त्रा देवपत्नियोंको अपने शरीरका भी भान नहीं रह जाता और श्रीवृन्दावनके समस्त जड एवं जङ्गम भी अपने स्वरूपको भूल जाते हैं अर्थात् जड पाषाण, तरु प्रभृति स्रवित होने लगते हैं और जङ्गम (चर) प्राणी विमुग्ध—स्थिर हो जाते हैं, श्रीरास-मण्डलमें भावावेशयुक्ता उन श्रीराधिकाजीको हम नमन करती हैं'॥ ८॥

'जिनके अङ्कमें लेटे हुए श्रीकृष्णचन्द्र अपने शाश्वत विहारस्थान गोलोकका स्मरणतक नहीं करते, कमलोद्भवा लक्ष्मी और श्रीपार्वतीजी जिनकी अंशरूपा हैं, उन समस्त शक्तियोंकी अधिष्ठात्री श्रीराधिकाजीको हम प्रणाम करती हैं'॥ ९॥

'(श्रीललितादि) सखियोंके साथ (ऋषभ, गान्धारादि) स्वरोंसे, (तार, मध्य और मन्द्र—इन) तीनों ग्रामोंसे तथा (अनेक) मूर्च्छनाओं (स्वरके चढ़ाव-उतारों)-से गाते हुए, प्रेमविवश होकर जिन्होंने (श्रीरासक्रीडाके समय) श्रीवृन्दावनमें एकमात्र अपनी ही शक्तिसे ब्राह्मी निशा (एक मासपर्यन्त दीर्घरात्रि)-का विस्तार (प्रादुर्भाव) किया, उन श्रीराधिकाजीको हम नमस्कार करती हैं'॥ १०॥

'किसी समय दो भुजाओंवाली (चतुर्भुजी नहीं) श्रीकृष्णकी मूर्ति बनकर अर्थात् स्वयं द्विभुज श्रीकृष्ण-वेश धारण करके वंशीके छिद्रोंको श्रीराधिकाजीने स्वरसे भर दिया। (तात्पर्य यह कि श्रीकृष्ण-वेश धारण करके किसी दिन श्रीराधिकाजीने वेणु-वादनका प्रयत्न किया और वे केवल वंशी-छिद्रोंसे (गायनरहित) ध्वनि निकाल पायीं।) इसीसे अत्यन्त उल्लसित होकर देव-देव श्रीकृष्णचन्द्रने कुन्द एवं कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला बनाकर उनका शृङ्गार करके उन्हें प्रसन्न किया'॥ ११॥

'जिनका इस उपनिषद्में वर्णन हुआ है, वे श्रीराधिकाजी और आनन्दसिन्धु श्रीकृष्णचन्द्र वस्तुतः एक ही शरीर एवं परस्पर नित्य अभिन्न हैं। केवल लीलाके लिये वे दो स्वरूपोंमें व्यक्त हुए हैं। अतएव जिस लीलाके लिये उन परम रससिन्धुका श्रीविग्रह दो रूपोंमें शोभित हुआ, उस लीलाको जो सुनता या पढ़ता है, वह उन परम प्रभुके विशुद्ध धाम (गोलोक)-में जाता है'॥ १२॥

इस उपनिषद्को पूर्वकालमें वसिष्ठजीने मधुरभाषी बृहस्पतिजीको पढ़ाया। बृहस्पतिजीने अपने यजमान इन्द्रको उपदेश किया और तभीसे यह उपनिषद् बार्हस्पत्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

प्रणवस्वरूप परमपुरुषको नमस्कार! प्रणवके स्मरणके साथ आद्या परमपालिका शक्तिको नमस्कार! नमस्कार!!

॥ अथर्ववेदीय श्रीराधिकातापनीयोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!